विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

वार्षिक शुल्क रु. 30/-
आजीवन शुल्क रु. 500/-

बुद्धवर्ष 2560, कार्तिक पूर्णिमा, 14 नवंबर, 2016 वर्ष 46 अंक 5

For online **Patrika** in various languages, visit: http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

को नु हासो किमानन्दो, निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा, पदीपं न गवेसथ॥
– धम्मपद १४६, जरादवग्गो.

जहां प्रतिक्षण (सब कुछ) जल ही रहा हो, वहां कैसी हँसी? कैसा आनंद? (कैसा आमोद? कैसा प्रमोद?) ऐ (अविद्यारूपी) अंधकार से घिरे हुए (भोले लोगो!) तुम (ज्ञानरूपी) प्रकाश-प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते?

दीपावली का सही अर्थ

[जमनाबाई हाईस्कूल, मुंबई में दीपावली के अवसर पर पूज्य गुरुजी द्वारा पुराने साधकों को दिया गया प्रवचन (संक्षेप में), दि. ०५ नवंबर-२००२]

धर्म जागता है तो अंधकार दूर होता है, प्रकाश फैलता है। पर जब हम धर्म को ही न समझें; अंधकार क्या है, प्रकाश क्या है इसे ही न समझें; तब केवल प्रतीक के रूप में काली अमावस्या की रात के अंधेरे को दूर करने के लिए दीपों की ज्योत जगाते हैं। अच्छी बात है, अच्छा प्रतीक है, पर प्रतीक तो प्रतीक ही है। वास्तविकता के स्तर पर समझें- धर्म क्या है! अगर धर्म सचमुच धर्म है तो वह सार्वजनीन होता है, सार्वदेशिक होता है, सार्वकालिक होता है। परंतु जब मनुष्य जाति के अलग-अलग समूह का अलग-अलग धर्म बन जाय, तब सार्वजनीन नहीं हुआ, यानी, धर्म ही नहीं हुआ। यदि सार्वकालिक न रहे- इस काल में ये-ये धर्म हैं और अगले किसी काल में ये-ये धर्म हैं तो सार्वकालिक नहीं। इस प्रदेश वालों का यह धर्म और उस प्रदेश वालों का वह धर्म तो सार्वदेशिक नहीं। तब खूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि धर्म नहीं है, धर्म के नाम पर धोखा है।

धर्म, निसर्ग के नियमों को कहते हैं, कुदरत के कानून को कहते हैं, विश्व के विधान को कहते हैं। जो सदा सब पर, सब समय एक जैसा लागू हो। उसे समझा तो हमने धर्म को ठीक से समझ लिया। प्रकृति का नियम है-- सूरज उगता है तो प्रकाश उत्पन्न होता है, वातावरण में गर्मी, उष्णता उत्पन्न होती है। यह सूर्य का धर्म है जो सदा एक-सा रहता है। अग्नि का धर्म है-- वह जलती है और जो उसकी चपेट में आ जाय, लपेट में आ जाय, उसे जलाती है। यह उसका धर्म है, स्वभाव है। ऐसा न हो तो अग्नि, अग्नि नहीं कुछ और होगी। बर्फ का धर्म है-- शीतल होती है और जो संपर्क में आये उसे शीतल करती है। यह उसका धर्म है, उसका स्वभाव है। लाखों- करोड़ों वर्ष पहले भी यही स्वभाव था, आज भी यही स्वभाव है, भविष्य में भी यही स्वभाव रहेगा-- यही धर्म है। ठीक इसी प्रकार हमें होश आ जाय कि मन में विकार जगते ही मन अपनी समता खो देता है, अपना संतुलन खो देता है, अपना शांति-सुख खो देता है। विकारों का यह स्वभाव है, यह उनका धर्म है, जो सब पर लागू होता है। मन विकारों से मुक्त हो जाय, निर्मल हो जाय तो अपने आप भीतर मैत्री जागती है, करुणा जागती है, सद्भावना जागती है। जरा-सा भी द्वेष नहीं, जरा-सा भी दौर्मनस्य नहीं, जरा-सी भी दुर्भावना नहीं। मैत्री है, करुणा है, सद्भावना है तो इन सद्गुणों का अपना स्वभाव है। जब निर्मल चित्त में ये सद्गुण जागते हैं, जो उनका स्वभाव है, तब भीतर बड़ी शांति मालूम होती है, बड़ा सुख मालूम होता है। यह निर्मल चित्त का स्वभाव है। जैसे मैले चित्त का स्वभाव है-- हमें दुःखी बनाता है, व्याकुल बनाता है, अशांत बनाता है, बेचैन बनाता है; वैसे ही निर्मल चित्त का स्वभाव है-- हमें शांति प्रदान करता है, सुख प्रदान करता है, चैन प्रदान करता है।

हजारों, लाखों, करोड़ों वर्ष पहले भी जो मनुष्य अपने भीतर विकार जगाता था, इतना ही व्याकुल होता था जितना आज, और उतना ही भविष्य में होगा- इसलिए सार्वकलिक है। जो व्यक्ति अपने भीतर विकार जगायगा; वह अपने आपको इस नाम से पुकारे या उस नाम से, कोई फर्क नहीं पड़ता। इस मां के पेट से जन्मा हो या उस मां के पेट से, कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसी वेष-भूषा वाला हो कि वैसी, कोई फर्क नहीं पड़ता। इस तरह के कर्म-कांड करने वाला हो कि उस तरह के, इस तरह की दार्शनिक मान्यता मानने वाला हो कि उस तरह की, कोई फर्क नहीं पड़ता। विकार जगाया है न! तो दंड मिलेगा ही, तत्काल मिलेगा। विकार अब जगायें और दंड मरने के बाद मिले, वह भी मिलेगा; लेकिन अब अभी क्या होता है? अभी दंड मिलता है, अभी व्याकुल होता है। यही निसर्ग का नियम है, कुदरत का कानून है, विश्व का विधान है जो सब पर लागू होता है।

आग जलती है और जलाती है। कोई जाने-अनजाने आग पर हाथ धर दे तो जलेगा ही। आग इस बात को नहीं देखेगी कि मुझे स्पर्श करने वाला यह व्यक्ति अपने आपको किस नाम से पुकारता है, किस संप्रदाय, वर्ण, जाति या गोत्र वाला है, किस मां के पेट से जन्मा है, कैसी दार्शनिक मान्यता व वेष-भूषा वाला है! कुछ नहीं देखेगी। आग पर हाथ धरा है तो आग उसे जलायगी ही, यह उसका धर्म है। हमें आग से जलना अच्छा नहीं लगता तो भूल कर भी आग पर हाथ न रखें, अपने आपको दूर रखें। ठीक इसी प्रकार इन विकारों का धर्म है, हमें व्याकुल करेंगे ही। हम व्याकुल नहीं होना चाहते तो विकारों से अपने आपको मुक्त रखें। इसी प्रकार धर्म सार्वभौमिक होता है-- किसी भी देश, प्रदेश का व्यक्ति हो, विकार जगाते ही तत्काल व्याकुल होगा। दुनिया की कोई शक्ति उसे नहीं बचा सकती, दंड मिलेगा ही। दंड नहीं अच्छा लगता तो विकारों से छुटकारा पायें।

जिस दिन मानव समाज में यह ज्ञान जागने लगता है कि धर्म स्वभाव को कहते है और हमारे चित्त का जैसा स्वभाव है, उसके अनुकूल ही हमें दंड या पुरस्कार मिलेगा, जिस दिन निसर्ग के इस नियम को, कानून को, स्वभाव को मानव समाज समझने लगता है तो समझो धर्म का उदय होने लगा। वाणी का दुष्कर्म हो या शरीर का, पहले मन को मैला करना होता है। जब तक यह समझेगा कि मैं चाहे जितने विकार जगाऊं, चाहे जितने दुष्कर्म करूं, फिर भी मेरी मुक्ति हो जायगी, मैं तो भव-चक्र से निकल ही जाऊंगा, मुझ पर तो किसी की कृपा हो ही जायगी, तो समझो उस पर अविद्या का अंधकार छाया हुआ है। भटक रहे हैं लोग, सच्चाई को समझना ही नहीं चाहते। बार-बार ऐसा होता है, बार-बार अधर्म का अंधकार फैलता है, लोग भूल जाते हैं कि धर्म क्या होता है। बड़ा दुर्भाग्य होता है जबकि धर्म और संप्रदाय शब्द पर्यायवाची हो जाते हैं; तब बेचारा कोई कैसे समझे कि धर्म क्या है? संसार में जितनी भी धार्मिक परंपराएं हैं, किसी भी परंपरा को देखो, सब के भीतर धर्म ही है। एक ही बात है- 'सदाचार का जीवन जीओ।' संसार की कोई भी धर्म-परंपरा ऐसी नहीं है जो यह कहे कि सदाचार का जीवन जीना

आवश्यक नहीं! अगर ऐसा कहती है तो समझो धर्म नहीं है। हर परंपरा यही कहती है- सदाचार का जीवन जीओ, दुराचार से दूर रहो।

दुराचार क्या होता है? जब हम अपनी वाणी या शरीर से कोई भी ऐसा काम करते हैं जिससे अन्य प्राणियों की हानि होती है, उनका अहित होता है, उनका अमंगल होता है, उनकी सुख-शांति भंग होती है तब वह दुष्कर्म होता है। और वह तभी होता है जबकि मन में विकार जगाते हैं। यह सब पर लागू होता है इसलिए सब का धर्म हुआ। और सदाचार का जीवन जीने के लिए मन को वश में करना होता है। सभी परंपराओं के लोग अपने शिविरों में आते हैं, मिलते हैं, चर्चा करते हैं, अपने ग्रंथों की बातें सामने रखते हैं तो यही कहते हैं-- मन को संयत रखो, संयमित रखो, वश में रखो। अरे, मन ही वश में नहीं होगा तो सत्कर्म कैसे करेंगे? दुष्कर्म ही दुष्कर्म करेंगे न। सारी परंपराओं को यह मान्य है। लेकिन मन को संयमित कर लिया, वश में कर लिया फिर भी अंतर्मन की गहराइयों में विकारों का संग्रह ही संग्रह, विकार पर विकार जगाये जा रहे हैं, विकारों का संवर्धन हुए जा रहा है। मानस के ऊपरी-ऊपरी हिस्से पर हमने कंट्रोल कर लिया, संयम कर लिया। अच्छी बात है, कुछ नहीं से तो अच्छा है, पर भीतर जो यह विकार जगाने का स्वभाव है, विकारों का संवर्धन करते रहने का ज्वालामुखी है, ऊपर-ऊपर से हजार शांति प्राप्त कर ले, पर अंतर्मन का ज्वालामुखी जब धधक उठेगा तब फिर वैसे के वैसे हो जायँगे। अतः मन की गहराइयों तक संपूर्ण मन को निर्मल करना है। कौन विरोध करेगा? किसी भी परंपरा-वाला विरोध नहीं कर सकता। क्योंकि यह जो धर्म है वह अभिन्न है, सबके लिए एक जैसा है। ऊपर-ऊपर की खोल या पात्र अनेक हैं, पर भीतर धर्म का सार एक ही है। किसी एक परंपरा का ऐसा कर्म-कांड, दूसरी का वैसा कर्म-कांड, तीसरी के कुछ और कर्म-कांड, ये भिन्न-भिन्न होंगे-- यह ऊपर की खोल है। दार्शनिक मान्यताएं भिन्न-भिन्न होंगी, व्रत-उपवास, तीज-त्यौहार भिन्न-भिन्न होंगे। इस विभिन्नता का नाम संप्रदाय और अभिन्नता का नाम धर्म है।

धर्म सबका एक जैसा होता है, सब पर लागू होता है, सब समय लागू होता है- तभी वह धर्म है। परंतु विभिन्नताओं को धर्म मान लें और ऐसा मान कर उसके प्रति गहरा चिपकाव हो जाय कि मेरा धर्म ही ठीक है, मैं जो कर्म-कांड करता हूं वही मुक्ति तक ले जायगा और तू कैसा कर्म-कांड करता है? इससे कैसे मुक्ति मिलेगी रे! आदि... ऐसी-ऐसी दार्शनिक मान्यताएं धर्म बन गयीं जिनका धर्म से दूर परे का भी संबंध नहीं। ध्यान से देखा जाय तो जो धर्म का दुश्मन है वह धर्म बन जाता है तब धर्म की हानि होती है, धर्म की ग्लानि होती है। तब कोई समझदार आदमी धर्म का सही स्वरूप प्रकट करता है, झगड़ता नहीं। जो तेरे कर्म-कांड, व्रत-उपवास, पर्व-उत्सव हैं तू मना! किसी की निंदा नहीं, झगड़ा नहीं। पर उनको धर्म मत मान। सदाचार है तो धर्म है, चित्त संयमित है, निर्मल है तो धर्म है। यह छूट जाय तो धर्म का ह्रास होता है, धर्म के नाम पर अधर्म फैलता है। मेरा देव तुझको स्वर्ग पहुँचा देगा। मेरा ईश्वर, तेरा ईश्वर.. आपस में लड़ते हैं। क्यों लड़ते हैं? अगर सचमुच कोई ईश्वर है तो सबका होगा न! भाई, धर्म को समझो! बहुत दिनों अंधेरे में रहे। किसी की निंदा नहीं, झगड़ा नहीं; कोई जैसा माने वैसा माने। हम धर्म को सही रूप में समझेंगे और उसे धारण करेंगे।

जब धर्म जागता है तो इसी तरह जागता है- अपने भीतर धर्म का दर्शन होता है, अनुभव करने की शक्ति जागती है। किसी को जब सम्यक संबोधि प्राप्त होती है तब वह स्वयं कहता है- **चक्खुं उदपादि**- चक्षु उत्पन्न होते हैं। यहां फिर शब्दों का जंजाल! सोचा आंख बंद करते ही भीतर कोई ऐसे चक्षु खुलेंगे कि हमको सब दिखने लगेगा! अरे, हमारा तो खुला ही नहीं तो हम कैसे मुक्त होंगे? समझें, धर्म की अपनी भाषा होती है, अपने देश में बार-बार जागती है, समय पाकर नष्ट हो जाती है। क्या चक्षु होता है? देखने की शक्ति जागती है। पुराने भारत की परंपरा में देखने के दो अर्थ-- एक तो सांसारिक अर्थ- ये जो मांसल चक्षु हैं ये रूप देखेंगे, रंग देखेंगे, रोशनी देखेंगे, आकृति देखेंगे-- यह बाहरी देखना हुआ। लेकिन अध्यात्म के क्षेत्र में देखने का अर्थ-- अनुभव करना, आंखों से देखना नहीं; अनुभव करने को देखना कहा जाता था।

बहुत पुरानी भाषा है भारत की, भूल-भाल गये, पर कभी-कभी इसकी गूंज सुनायी देती है। जैसे कोई बहुत दूर से कोई आवाज सुनायी दे तो कहें, 'अरे देख, कैसी आवाज है?' यह देखने का अर्थ क्या हुआ करता था? आज भी कहीं-कहीं इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है। यह संगीत कितना मधुर है- अरे, सुन कर तो देख! सुन कर क्या देखे? उसका कोई रंग-रूप या आकृति है? क्या देखे? सुन कर अनुभव कर कि कितना मधुर है! यह मखमल बहुत मुलायम है, बहुत मुलायम है- अरे, छूकर कर तो देख! छूकर देखे क्या? उसका रंग देखे, उसका रूप देखे, उसकी आकृति देखे? छूकर अनुभव कर, सचमुच मुलायम है। यह मिठाई बहुत स्वादिष्ट है, बहुत स्वादिष्ट है; अरे, तू चख कर तो देख। चख कर उसका रूप देखे, उसका रंग देखे, क्या देखे? 'देखने' का अर्थ हुआ करता था अनुभव कर। कान में जो शब्द आते हैं- अनुभव कर, आंख से जो रूप दिखता है- अनुभव कर, नाक से जो गंध आती है- अनुभव कर, जीभ से जो रस लगता है- अनुभव कर, शरीर से कोई स्पर्श होता है- अनुभव कर, मन से कोई विचार उठते हैं- अनुभव कर। 'अनुभव कर'- उसको देखना कहा जाता था। अनुभव करके जानो तो **चक्खुं उदपादि**। अनुभव करने की शक्ति जागी। इस साढ़े तीन हाथ की काया में अनुभव होता है। बाहर किसी इंद्रिय का कोई विषय होगा, वह हमारी इंद्रिय को लगेगा तब अनुभव होगा, नहीं तो अनुभव नहीं होता। तो अनुभव करने की शक्ति जागी।

पञ्ञा उदपादि- प्रज्ञा जागी। फिर शब्दों के अर्थ भूल गये। भारत की पुरानी भाषा में 'प्रज्ञा' कहते थे प्रत्यक्ष ज्ञान को। वही प्रमुख ज्ञान कहा जाता था, वही प्रत्यक्ष ज्ञान कहा जाता था। अपना ज्ञान है न! अपनी अनुभूति से जो ज्ञान जागा वह अपना ज्ञान, अन्यथा परोक्ष ज्ञान। कोई कहता है- ऐसा-ऐसा करो तुम मुक्त हो जाओगे। ऐसा-ऐसा उसने किया होगा तो वह मुक्त हुआ, हम तो नहीं हुए ना। जिस दिन हम भी ऐसा-ऐसा करने लगेंगे और देखेंगे कि विकार दूर हो रहे है, हमारे दुःख दूर हो रहे हैं, हमारे बंधन दूर हो रहे हैं तो हमारा ज्ञान हुआ। पराया ज्ञान हमारे लिए प्रेरणा दे सकता है, हमें मार्गदर्शन दे सकता है, हमें मुक्त नहीं कर सकता। परोक्ष ज्ञान नहीं, अपना प्रत्यक्ष ज्ञान जागे, भारत में वही प्रज्ञा कहलाती थी। उस प्रत्यक्ष ज्ञान में हम पक जायँ, स्थित हो जायँ- तो कान पर शब्द आते ही अनुभूति कहेगी, देख तरंग है। तरंग से तरंग लगी तो एक नयी तरंग पैदा हुई, अनित्य है रे! अनित्य है रे! उसका अर्थ समझेंगे बुद्धि के स्तर पर, लेकिन अंधेपन में प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। अनित्य है रे! नाक से गंध आयी- अनित्य है रे! जीभ पर रस आया कि शरीर से स्पर्श हुआ- अनित्य है रे! मन पर चिंतन आया- अनित्य है रे! तरंग ही तरंग है। उन तरंगों की अनुभूति हो रही है और हम अपना होश नहीं खोते तो प्रज्ञा में स्थित हो रहे हैं।

बहुत पाठ किया करता था मैं भी-- **इन्द्रियाणी इन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता**। जो इंद्रियों का काम इंद्रियों से ही कराता है, इंद्रियां केवल इंद्रियों के काम के लिए हैं, यह जो जान गया वह प्रज्ञा में प्रतिष्ठित हो गया। परंतु कैसे जान गया? सभी जानते हैं इंद्रियां इंद्रियों का ही काम करेंगी। आंख देखने का ही काम करेगी, इसमें क्या बात हुई? कान सुनने का ही काम करेंगे, क्या बात हुई? तो क्या सभी स्थितप्रज्ञ हैं? नाक सूंघने का ही काम करेगा, जीभ चखने का ही काम करेगी, शरीर स्पर्श का ही काम करेगा, मन चिंतन का ही काम करेगा; इससे प्रज्ञा में कैसे स्थित हुए? अरे, कहने वालों ने भारत की पुरानी प्रज्ञा का इजहार किया, उसे सामने रखा। ये मन के चार खंड- पहला खंड जानने का काम करता है। इंद्रियों का कोई विषय हमारी किसी इंद्रिय से लगा तो झट पहला हिस्सा-- अरे, कुछ हुआ। दूसरा हिस्सा पहचानने का काम करता है, ये हुआ।... तीसरा हिस्सा उसकी जो संवेदना होती है उसको भोगने का काम करता है। चौथा हिस्सा प्रतिक्रिया करता है और गांठे बांधता है। तो जिसने यह बात कही-- **इन्द्रियाणी इन्द्रियार्थेभ्यः** - इंद्रियों से केवल इंद्रियों का काम हो। यानी, कान में शब्द आया तो बस काम खतम। उसके आगे के तीन हिस्सों का काम नहीं करेंगे हम। उस अवस्था तक पहुँचना है। आंख से रूप दिखा तो बस सिर्फ रूप दिखा, बात खतम। अरे, इस अवस्था पर पहुँचने के लिए काम करना होता है, बहुत गहराइयों तक मेहनत करनी होती है। अब तो कोई भी विषय इंद्रिय से टकराया कि वह चौथा

हिस्सा प्रबल होकर खड़ा हो गया-- राग जगायगा। प्रतिक्रिया करेगा तो गांठें बांधेगा, तो **गुणान्वितं-गुणान्वितं-** यही काम करेगा।

सच्चाई को अनुभूति पर उतारे बिना कोई आदमी कैसे समझे? जिसकी अनुभूति जाग गयी, सम्बोधि जाग गयी वह कहता है- **विज्जा उदपादि**। विद्या जाग गयी, माने यह जो अविद्या थी उसी को सच माने जा रहे थे। जो अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है; उस पर नित्य, शाश्वत का आरोपण करके, जो अनित्य है उस पर नित्य का आरोपण कर दिया तो अविद्या है। उस अविद्या के बाहर निकले तो विद्या है। अरे भाई, यह तो अनित्य है रे! सारा इंद्रिय क्षेत्र अनित्य है रे! शरीर और चित्त का सारा क्षेत्र अनित्य है रे! तो विद्या है, अविद्या नहीं है।

फिर अंत में कहते हैं- **आलोको उदपादि**, आलोक जाग गया। यह हम जो दिये जला करके आलोक करते हैं, अच्छा है, बाहर-बाहर का भी अंधकार दूर होना चाहिए, पर हमें तो भीतर का अंधकार दूर करना है। वह दूर हुआ तो सच्चाई सामने आयी- अरे, क्या कर रहे हैं? हम अपने अंदर गांठें बांध रहे हैं, अपने को व्याकुल किये जा रहे हैं। यह भी होश नहीं कि मैं अपनी हानि कर रहा हूं। औरों की हानि तो करता ही है, पहले अपनी हानि कर रहा हूं। जब-जब वाणी या शरीर से दुष्कर्म करता हूं, मन को मैला करता हूं, किसी की हत्या करता हूं तो पहले मन में द्वेष, दुर्भावना, क्रोध जागता है तब किसी की हत्या होती है। चोरी करता हूं तो पहले लोभ-लालच जागती है तब चोरी करता हूं। व्याभिचार करता हूं तो पहले गहरी वासना जागती है तब व्याभिचार करता हूं। इसी तरह से वाणी से झूठ बोलूं, किसी को ठगूं, द्वेष की बात करूं तो कैसे करूंगा? कोई न कोई विकार जगा कर करूंगा। और कुदरत का नियम- जैसे ही मैंने विकार जगाया कि तुरंत दंड मिलने लगा, देर नहीं करता। दोनों साथ-साथ जागते हैं इसलिए 'सहजात' कहलाते हैं। मैंने विकार जगाया और उसके साथ दुःख जागा, व्याकुल हो गया, शांति खत्म हो गयी। यह धर्म नहीं समझा तो अंधेरे में है और अपनी हानि किये जा रहा है।

जिस दिन यह ज्ञान हो जाय कि मैं अपनी हानि नहीं करूंगा तो कैसे हानि नहीं करेगा? बाहर की दुनिया में हमने आग पर हाथ रखा, हाथ जल गया। एक-दो बार गलती से रख दिया, फिर होश आ गया। आग पर हाथ नहीं धरना! यह जलाती है। ऐसे ही अपने भीतर काया में स्थित होकर, कायस्थ हो करके इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर अनुभूति से जान रहे हैं। अंधकार नहीं है। जैसे आग को छूकर बाहर-बाहर से जान लिया कि जलाती है, ऐसे ही काया में स्थित होकर जान लिया, विकार जगा कि हम व्याकुल हुए, हमको दंड मिला। अनुभूति से जान लिया तो धर्म को जान लिया। भीतर प्रकाश आ गया, अंधकार दूर हो गया। अंधकार में आदमी अपने आप की हानि करता है अन्यथा कौन हानि करना चाहेगा? दुनिया में कोई ऐसा आदमी है जो अपने लिए दुःख पैदा करे और कहे बड़ा खुश हूं। कौन अपने आपको व्याकुल बनाना चाहता है, दुःखी बनाना चाहता है? इससे बड़ा अंधकार और क्या होगा कि अपने अंतर्मन की गहराईयों में जहां विकार उत्पन्न होते हैं, उसे हम जानते ही नहीं कि कब उत्पन्न हुआ, क्या उत्पन्न हुआ और उसका क्या परिणाम हुआ? यह ऊपर-ऊपर वाला चित्त बाहर-बाहर की दुनियादारी में अपने आपको बड़ा खुश मानता है। जैसे ढेर सारे अंगारे जल रहे हैं और उस पर एक मोटी-मोटी राख की परत है। सारा जीवन इस राख की परत में बीत गया- देख, बिल्कुल आग नहीं है न! अरे भाई! भीतर आग के अंगारे हैं। ये दिखने लगें, अनुभव पर उतरने लगें तो धर्म जाग गया, फिर अधर्म कर ही नहीं सकता। कैसे करेगा? अपनी हानि कोई कैसे करेगा? कोई नहीं करेगा।

यह जागता है तो **आलोको उदपादि**। आलोक हो गया, प्रकाश हो गया, अंधकार दूर हो गया। पुराने भारत के ये पुराने शब्द, आज इनके अर्थ ही लुप्त हो गये। तो जो कुछ अंतर्मुखी हो करके अनुभव कर रहे हो, इनके साथ-साथ इन शब्दों का अर्थ भी जागे- क्या अज्ञान है, क्या ज्ञान है, क्या दुष्प्रज्ञता है, क्या प्रज्ञता है, क्या अविद्या है, क्या विद्या है, क्या अंधकार है, क्या प्रकाश है? बुद्धि-विलास करके नहीं! गुरु महाराज ने कहा हैं इसलिए माने जा रहे हैं, हमारी परंपरा कहती है इसलिए माने जा रहे हैं, हमारे धर्म शास्त्र कहते हैं इसलिए माने जा रहे हैं, फिर तो धोखा ही धोखा। जिस दिन यह कहोगे- मेरा अनुभव कह रहा है इसलिए मान रहा हूं। जैसे आग पर हाथ रखने पर हाथ जलने लगता है, वैसे ही मन में विकार जगाने पर तुरंत दंड मिलता है, मैं व्याकुल हो जाता हूं, दुखियारा हो जाता हूं। यह प्रज्ञा हुई, प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। यह आलोक जागा। बाहर-बाहर आलोक होना चाहिए। अंधकार का जीवन क्यों जीएंगे? अंधकार का जीवन चमगादड़ का जीवन, उल्लू का जीवन। बाकी लोग तो प्रकाश का जीवन जीएंगे। लेकिन केवल बाहर के प्रकाश से बात बनती नहीं। भीतर का आलोक जागे! भीतर का प्रकाश जागे! इसके लिए साधना करनी है। कहीं यह न मान बैठें कि मैंने सिर से पांव तक के इतने चक्कर लगाये और बादलों के ऊपर कोई बैठा गिन रहा है कि इसने कितने चक्कर लगाये। इसने ज्यादा चक्कर लगाये, इसके लिए यह दरवाजा खोल रहा हूं। उसने कम लगाये उसके लिए यह दरवाजा खोलूं। अरे, कोई दरवाजा खोलने वाला नहीं है भाई!

अत्ता हि अत्तनो नाथो, ... अत्ता हि अत्तनो गति। हम स्वयं अपने मालिक हैं। और कौन मालिक है? जरा सोचकर देखो! ऐसा कौन मालिक होगा जो हमारे मन में विकार जगाकर हमको व्याकुल करे? यह कैसा मालिक है हमको दुःखी बनाने वाला? अरे, क्यों बेचारे को बदनाम करो! उसको क्या पड़ी है कि संसार के सारे लोगों को व्याकुल बनाये, सब में विकार ही विकार जगाये और कहे कि मेरी प्रार्थना करो, सब को तार दूंगा। कैसा होगा वह? यह कैसा प्राणी है? अरे, नहीं, हमने कल्पना कर ली, हमने बना लिया। जिस दिन यह होश आ जाय कि मैं अपना मालिक हूं, मैं अपनी गति बनाता हूं। सुख की गति बनाऊं कि दुःख की गति बनाऊं, दुर्गति बनाऊं, कि सद्गति बनाऊं या सारी गतियों के परे मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लूं- मैं ही जिम्मेदार हूं।

धर्म का एक और मापदंड है- धर्म जिस दिन अपने सही स्वरूप में जागता है तो हर एक व्यक्ति को स्वावलंबी बनाता है। अन्यथा कोई कह देगा किसी अदृश्य शक्ति को खुश करोगे तो तुम एकदम मुक्त हो जाओगे। आओ हमारे पास, पर इतनी दक्षिणा रखो तब मुक्ति होगी। तो समझो, अधर्म ही अधर्म है। किसी की निंदा नहीं, पर समझना चाहिए कि उन बेचारों का यही पेशा है, वे अपना पेट पालने के लिए ऐसा कहते है, कहें। हम क्यों उस जंजाल में पड़ें? कोई धोखा देता है और हम उस धोखे में पड़ते हैं तो अपनी हानि करने लगे, तो हमें बचना चाहिए। जो जैसा मानता हो माने, पर सही माने में खुश रहे। लेकिन हमको स्वावलंबी बनना है। हम जिम्मेदार हैं, हमारे प्रत्येक एक्शन की जिम्मेदारी हमारी है। अच्छे एक्शन करेंगे, अच्छा कर्म करेंगे तो अपने आप अच्छा फल आयगा। प्रकृति का नियम है जैसा बीज होगा, वैसा फल होगा। इस नियम को कोई बदल नहीं सकता, इसे समझते हुए हम अच्छा बीज डालें, हम सत्कर्म करें। अपने आप सब ठीक होगा, सब ठीक ही होगा। हम दुष्कर्म से बचें, दुष्फल हमारे नजदीक नहीं आयेंगे, दुःख हमारे पास नहीं आयेंगे। इतनी सीधी-सी बात धर्म की, पर उसे हम सुनना नहीं चाहते, समझना नहीं चाहते, पालन करना नहीं चाहते क्योंकि हमने अपने आपको बड़ा दुर्बल मान लिया- अरे, हमसे क्या होगा? हमसे कैसे होगा? कोई और कर देगा, कोई और कर देगा।

जिस दिन धर्म जागता है उस दिन हर व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी समझता है, स्वावलंबी बनता है। परावलंबी केवल इतना ही कि कोई मार्ग-दर्शन कर दे, कोई कैसे चले, ऐसा रास्ता बता दे। हर कदम पर चलना मुझे ही होगा यह होश जगा रहे हो तो समझो इस आलोक का पर्व हमारे लिए सचमुच नया वर्ष ले करके आया, हमारे लिए सचमुच नयी जिंदगी ले करके आया, हमारे लिए सचमुच नया भविष्य ले करके आया, कल्याणकारी भविष्य ले करके आया।

खूब समझदारी के साथ अविद्या के अंधकार को दूर करें। धर्म के सही स्वरूप को समझें और मुक्ति के रास्ते पर कदम-कदम बढ़ते चले जायँ। अपना मंगल साध लें! अपना कल्याण साध लें! अपनी मुक्ति साध लें! सब का मंगल हो! सब का कल्याण हो!!

कल्याण मित्र,

सत्यनारायण गोयन्का

Registered No. NSK/235/2015-2017

WPP Postal License No. AR/Techno/WPP-05/2015-2017

पगोडा पर रात भर रोशनी का महत्त्व

पूज्य गुरुजी बार-बार कहा करते थे कि किसी धातु-पगोडा पर रात भर रोशनी रहने का अपना विशेष महत्त्व है। इससे वातावरण धर्म एवं मैत्री-तरंगों से भरपूर रहता है। सगे-संबंधियों की याद में ग्लोबल पगोडा पर रोशनी-दान के लिए प्रति रात्रि रु. ५०००/- निर्धारित किये गये हैं। अधिक जानकारी के लिए Mr. Derik Pegado 022-33747512, Email: audits@globalpagoda.org or R.K. Agarwal, Mo. 7506251844, Email: rkagarwal.vri@globalpagoda.org से संपर्क करें। ☚

पूज्य माताजी की प्रथम पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में संघदान का आयोजन

ग्लोबल विपश्यना पगोडा-परिसर में **रविवार, २२ जनवरी, २०१७** को प्रातः १० बजे **पूज्य माताजी** इलायचीदेवी गोयन्का की प्रथम पुण्यतिथि (५ जनवरी) एवं **सयाजी ऊ बा खिन** की पुण्यतिथि (१९ जनवरी) के उपलक्ष्य में **वृहत् संघदान** का आयोजन किया गया है। उसके बाद साधक-साधिकाएं **एक दिवसीय महाशिविर** का भी लाभ ले सकेंगे। -- जो भी साधक-साधिकाएं इस पुण्यवर्धक दान-कार्य में भाग लेना चाहते हों, वे कृपया निम्न नाम-पतों पर संपर्क करें-- Mr. Derik Pegado 022-33747512, Email: audits@globalpagoda.org or Mr. R.K. Agarwal, Mo. 7506251844, Email: rkagarwal.vri@globalpagoda.org

VRI का वर्ष २०१७ पालि अभ्यास कार्यक्रमः

(१). **'प्रारंभिक पालि'** -- छह सप्ताह का पालि-हिंदी आवासीय प्रशिक्षण कार्यक्रम-- १५-०१ से २४-०२-१७. (२). **'उच्चस्तरीय पालि'** -- दो सप्ताह का पालि-हिंदी आवासीय प्रशिक्षण कार्यक्रम-- २७-२ से १०-३-१७. (३). **'अभिधम्म जीवन-व्यवहार में'** -- विपश्यना विशोधन विन्यास, मुंबई और मुंबई विश्वविद्यालय के सहयोग से **सप्ताह में एक बार, ३-३ घंटे** की कक्षाएं होंगी। समय- १० दिसंबर, २०१६ से २५ फरवरी, २०१७ तक. योग्यता १२वीं कक्षा पास। अन्य कार्यक्रमों की योग्यता व सभी कार्यक्रमों के लिए-- **संपर्क**-- http://www.vridhamma.org/Theory-And-Practice-Courses - इस शृंखला का अनुसरण करें अथवा संपर्क करें-- (१) विपश्यना विशोधन संस्थान: कार्यालय- ०२२- ३३७४७५६०, (९:३० से ५:३० बजे तक) (२) श्रीमती बल्जीत लांबाः ९८३३५१८९७९, (३) आयुष्मती राजश्रीः ०९००४६९८६४८, (४) श्रीमती अल्का वेंगुर्लेकरः ९८२०५८३४४०, (५) श्रीमती अर्चना देशपांडेः ९८६९००७०४०. E-mail: mumbai@vridhamma.org

अतिरिक्त उत्तरदायित्व

१. श्री इंद्रवदन कोठडिया -- संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, कतर एवं बहरीन आदि के समन्वयक क्षेत्रीय आचार्य की सहायता सेवा
२. श्री संथनगोपालन, **धम्म अरुणाचल** के केंद्र-आचार्य की सहायता सेवा

नव नियुक्तियां सहायक आचार्य

१. डॉ. राजेंद्र गायकवाड, नाशिक
२. श्री पोन्नुस्वामी वेंकटेश, बंगलूर
३. श्री राजेंद्र चांडक, दर्यापुर (अमरावती)
४. श्रीमती मंगला चांडक, दर्यापुर "
5. U Aung Kyaw Nyan Wai, Myanmar
6. Daw Win Win Khaing, Myanmar

बालशिविर शिक्षक

1. Mrs. Claudia Arakaki, Australia
2. Mrs. Trish Nunez, Australia

ग्लोबल विपश्यना पगोडा में एक-दिवसीय महाशिविर

रविवार, २२ जनवरी, २०१७ को **सयाजी ऊ बा खिन** की पुण्यतिथि (१९ जनवरी) एवं **माताजी** की पुण्य-तिथि (५ जनवरी) के **उपलक्ष्य में** 'ग्लोबल विपश्यना पगोडा' में **महाशिविर** एवं **संघदान** होगा। **समयः** प्रातः **१०** बजे से अपराह्न **4** बजे तक। 3 बजे के प्रवचन में बिना साधना किये लोग भी बैठ सकते हैं। बुकिंग के लिए कृपया निम्न फोन नंबरों या ईमेल से शीघ्र संपर्क करें। कृपया बिना बुकिंग कराये न आयें और **समग्गानं तपो सुखो**- सामूहिक तप-सुख का लाभ उठाएं। **संपर्कः** 022-28451170 022-337475-01/43/44-Extn. 9, (**फोन बुकिंगः 11** से **5** बजे तक, प्रतिदिन) **Online Regn.: www.oneday.globalpagoda.org**

दोहे धर्म के

बाहर-बाहर सज उठे, जगमग-जगमग दीप।
पर मन अँधियारा रहा, जगा न प्रज्ञा दीप॥

बाहर दीप जलाय कर, खुशियां रहे मनायँ।
अंतर्दीप प्रदीप्त हो, तो मंगल छा जाय॥

महापुरुष की विजय पर, मिथ्या थोथा गर्व।
जीतें अपने आपको, तभी मनाएं पर्व॥

अंतर्मन में धर्म का, जागे विमल प्रकाश।
हटे अंधेरा मोह का, कटें कर्म के पाश॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा०) लिमिटेड

८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- 400 018
फोन: 2493 8893, फैक्स: 2493 6166
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धर्म रा

घणा जळाया ढीबरा, घणा जळाया दीप।
पण मन अँधियारो रह्यो, जग्यो न प्रग्या दीप॥

महलां तो बिजळी जळै, दिवळा जळै कतार।
पण अभिमान'र दंभ रो, मन छायो अँधियार॥

जगमग जगमग चासली, दिवळा सजी कतार।
इब अंतर मँह दे जगा, दिव्य जोत री धार॥

बिजळी हांडा चास कर, उजळो कर्‌यो उजास।
इब अंतर री कोटर्‌यां, भरलै विमल प्रकास॥

मोरया ट्रेडिंग कंपनी

सर्वो स्टॉकिस्ट - इंडियन ऑईल, ७४, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.६, अजिंठा चौक, जलगांव - ४२५ ००३, फोन. नं. ०२५७-२२१०३७२, २२१२८७७
मोबा.०९४२३१८७३०१, Email: **morolium_jal@yahoo.co.in**
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी- 422 403, दूरभाष : (02553) 244086, 244076.
मुद्रण स्थान : अपोलो प्रिंटिंग प्रेस, जी-२५९, सीकॉफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी, सातपुर, नाशिक-422 007. **बुद्धवर्ष 2560, कार्तिक पूर्णिमा, 14 नवंबर, 2016**

वार्षिक शुल्क रु. **30/-,** US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. **500/-,** US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71. Registered No. NSK/235/2015-2017**

WPP Postal Licence No. AR/Techno/WPP-05/2015-2017
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.)

DATE OF PRINTING: 1 November, 2016, DATE OF PUBLICATION: 14 November, 2016

If not delivered please return to:-

विपश्यन विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422 403
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (02553) 244076, 244086, 243712,
243238. **फैक्स :** (02553) 244176
Email: info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org